महावीर की महिमा

लक्ष्मीचन्द्र 'सरोज'

वर्तमान में महावीर नहीं हैं, पर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का सूचक उनका जीवन-चरित्र व उनका प्रांजल परिष्कृत स्वर्णोपदेश आज भी उपलब्ध है, उनके अनेक अनुयायी भी हैं, जो महावीर जयन्ती और महावीर-निर्वाण-दिवस बड़े उत्साह से मनाते हैं, तथा २५०० वें महावीर निर्वाण वर्ष समारोह के सन्दर्भ में तो वे महावीर के प्रति व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों रूपों में अपेक्षाकृत कार्य भी कर के दिखा चुके हैं। समणसुत्त का प्रकाशन, एक ध्वज का अवतरण, अनेकानेक स्मारिकाओं, स्मृति-ग्रन्थों का प्रकाशन, उत्सव की ऊर्जा के सूचक विविध धार्मिक-सामाजिक आयोजन आज भी प्रेरणादायक बने हैं, पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं समझा जावे कि अब कुछ करना शेष नहीं रहा, जबकि अभी तो कार्य का श्रीगणेश ही हुआ है।

महावीर ने जो कुछ कहा और जो कुछ किया, वह केवल एक युग और एक देश के लोगों के लिए नहीं था, उनके कार्य, उनके दिव्य सन्देश प्राणिमात्र के लिए हैं, उनकी धर्म-सभा में (समवशरण में) पुरुष और स्त्री, पशु और पक्षी, राजा और रंक, ऊँच और नीच सभी समान रूप से स्थान पाते थे, सभी का अपनी शंका के समाधान का स्वर्ण अवसर सुलभ था। महावीर ने अपने जीवन-काल के ७२ वर्षों में वह कार्य किया, जिससे मानवता को आधार मिला, और विश्व के व्यक्तियों को विश्वसनीयता की उपलब्धि हुई।

महावीर जिन परिस्थितियों में उत्पन्न हुए, उनमें एक ओर हिंसा का बोलबाला था और दूसरी ओर अमित वैभव और विलास का आयोजन था। एक ओर कर्म के फल को अस्वीकृति दी जा रही थी तो दूसरी ओर अपनी ही बात को सूर्य सत्य घोषित किया जा रहा था। सृष्टि के एक जनक को स्वीकार कर स्वयं के ईश्वर होने की बात सर्वथा भुलाई जा रही थी, और दूसरे के, परमार्थ में भी स्वार्थ को लेख कर विश्वबन्धुत्व को अपने में सीमित या कैद किया जा रहा था। महावीर ने देखा कि धार्मिक-सामाजिक, आर्थिक-राजनैतिक सभी क्षेत्रों में उतना सुधार आवश्यक है कि जितना भी शक्य और सम्भव है। इसलिए उन्होंने मानसिक स्वतंत्रता और साहसिक आवश्यकता का महत्व समझाया। अहिंसावाद और अपरिग्रहवाद, कर्मवाद और स्याद्वाद, अनीश्वरवाद और विश्वबन्धुत्ववाद द्वारा महावीर ने संसार के समस्त प्राणियों के लिए सुख-शान्ति, सन्तोष और समृद्धि का सन्देश दिया था।

जब सभी प्राणियों को प्राण प्रिय हैं और हम किसी को प्राण दे नहीं सकते हैं, तब हमें उनके प्राण लेने का भी क्या अधिकार है? क्या हमने मन और मति इसलिए पाई कि दुर्बलों के साथ अन्याय करें, उन्हें मार डालें, उन्हें सुख से जीने नहीं दें, और तो और धर्म के नाम पर यज्ञ की आड़ में अश्व और अज तथा मनुष्य की भी बलि दें? यह तो प्रत्यक्ष हिमालय-सा सुस्पष्ट अधर्म है। इससे नैतिक मूल्यों का ह्रास होता है, अतएव अहिंसा की ही आराधना हो हिंसा की नहीं, 'जिओ और जीने दो' की भावना ही जीव मात्र के लिए कल्याणकारी है। अहिंसा ही वह भगवती है जिसे जगन्माता का गौरव दिया जा सकता है।

जीवन की भाँति धन-वैभव-विलास भी संसारियों को प्रिय है। धर्म-ग्रन्थों में धन को ग्यारहवां प्राण कहा गया। धन, सुखमय जीवन के लिए सभी को काम्य है पर संसार में इतना धन-वैभव ही नहीं है कि उससे एक व्यक्ति की भी अभिलाषाएँ पूर्ण की जा सकें। इसलिए सभी की अभिलाषायें पूर्ण होना असम्भव दुस्साध्य हो गया। कतिपय समाज के विशिष्ट श्रेष्ठ कहे जाने वाले लोगों ने लक्ष्मीदेवी बनाम धनदेव को अपनी तिजोरियों में बन्दी बना लिया। जैसे खेल में एक खिलाड़ी गेंद पकड़ ले और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे खिलाड़ी की ओर नहीं फैंके तो खेल बन्द हो जाता है, वैसे ही कुछ लोगों द्वारा धन-वैभव पर अधिकार कर लेने से समाज में समता समाप्त प्रायः हो गई है और विषमता बढ़ गई है। एक वर्ग अतिसुख से पीड़ित हुआ तो अन्य वर्ग दुख से पीड़ित हुआ। इस स्थिति में आवश्यक है कि अपनी आवश्यकतायें कम से कम हों और संचित द्रव्य का देश और समाज के हित में दान हो, ताकि वैभव के लिए आक्रमण न हो, हिंसा न हो। धनिक धन का त्याग कर उसकी रक्षा से निश्चिन्त होगा और निर्धन धन पाकर अपेक्षाकृत सुखमय जीवन व्यतीत कर सकेगा। अपरिग्रह की भावना के विकास से ही सामाजिक मूल्यों का पुनरुत्थान होगा, और सभी सहो अर्थों में अपने को सामाजिक प्राणी समझ सकेंगे। अपरिग्रह ही वह भगवान् है जिसे जीवित ईश्वर होने का सौभाग्य दिया जा सकता है। इससे ही सृष्टि आनन्दित होगी।

कर्मों का फल तो मिलता ही है, हाथ पर आग रखें तो गर्मी का अनुभव होगा। हाथ पर बरफ रखें तो शीतलता का अनुभव होगा। इसी प्रकार श्रेष्ठ कार्य करें तो चित्त उल्लसित होगा और वित्त सफल होगा, पर निकृष्ट कार्य करें तो मन खिन्न होगा और धन तथा श्रम एवं समय निष्फल होगा। हम जैसा भी काम करेंगे, वैसा फल हमें अवश्य मिलेगा। हम कर्म करें और दूसरे फल पावें या दूसरे कर्म करें और हम फल पावें, ऐसी मान्यता न्याय और नीति, लोक व्यवहार और धार्मिक-सामाजिक विचार से विरुद्ध है। इसलिए जहाँ तक हो सके वहाँ तक उत्कृष्ट कार्य करने के लिए ही पर्याप्त उत्साह दिखलाया जावे पर निकृष्ट काम करने के लिए उदासीनता-उपेक्षा बतला कर अपने लिए अकारण असमय उत्पन्न होने वाली उद्विग्नता से बचा लिया जावे। कर्म का फल अतीव प्राकृतिक और सुनिश्चित है। जैसे सहस्र कलियों वाले कमल की प्रत्येक कली प्रथम और सहस्रवीं है, वैसे ही संसार के प्रत्येक धर्म और दर्शन के आराधक की बात में सत्यांश है, परन्तु जैसे एक ही कली पूर्ण सहस्रदल कमल नहीं है, बल्कि पूर्ण कमल बनने के लिए अन्य कलियाँ भी साथ लिये है वैसे ही सभी व्यक्तियों की बातों में सत्यांश तो सम्भव है, पर पूर्ण सत्य नहीं। पूर्ण सनातन शाश्वत सत्य की उपलब्धि तो अन्य जनों की बातों की भी स्वीकृति देने से होगी केवल अपनी बात का बतंगड़ बनाने से नहीं। पर्याय की दृष्टि से जीव अनित्य है, यह क्षणिकवादी बौद्ध दृष्टि सही है और द्रव्य दृष्टि से जीवात्मा नित्य है, यह प्रकृतिपुरुष तत्त्ववादी सांख्यिकी दृष्टि भी सही है, परन्तु जीव आत्मा न सर्वथा नित्य है और न सर्वथा अनित्य है, बल्कि जीव कथंचित् (किसी दृष्टि से) नित्य और कथंचित् अनित्य है। स्यात् (अन्य का भी अस्तित्व सूचक) वाद (विचार-धारा) में दोनों ही नहीं, बल्कि अनेक दृष्टियों का समावेश है, अतएव यह सर्वोपरि शीर्षस्थ है और दार्शनिक सरोवर का एक ही सहस्रदल कमल है। स्याद्वाद मूलक दृष्टि लिए रहने से ही समाज में एक व्यक्ति अनेक सम्बन्ध स्थापित करके पूर्णतया सफलीभूत सामाजिक बना है।

विश्व को बनाने वाला ईश्वर है, इस कथन की अपेक्षा यह कहना अधिक सही है कि हम सभी ईश्वर के अंश हैं, और मन्दिरों के ईश्वरों (भगवान की मूर्तियों) को हमने ही इसलिये बनाया है कि हम अंश अंशी (अनेक अंशों वाले ईश्वर-पूर्ण) बन सकें। जैसे एक बीज समुचित वातावरण में विकसित होकर अनेक बीजों को जन्म और जीवन देने में सक्षम है, वैसे ही ईश्वर-अंश जीवात्मा स्वयं भी सुविकसित हो कर ईश्वर (आत्मिक गुण सम्पन्न व्यक्ति) बन सकने में सक्षम है, और कृतकृत्य सिद्ध होकर सर्वदा के लिए संसार से अदृश्य होने में समर्थ है। ऐसी मान्यता में यह प्रश्न भी उत्पन्न नहीं होता कि यदि विश्व को ईश्वर ने बनाया तो ईश्वर को किसने बनाया। दूसरे ने बनाया तो उसे किसने बनाया। जो अनवस्थादोष हो।

हम ही सुखी न हों, बल्कि संसार के सभी प्राणी सुखी हों। इस सद्भावना और शुभकामना के सृजन के लिए भी हमें अहिंसा और अपरिग्रह मूलक बातों पर विशेषतया दृष्टिपात करना होगा। सद्भावना और शुभकामना की सैद्धान्तिक सक्रियता-सार्थकता अहिंसा और अपरिग्रह मूलक प्रयोगों पर ही सफलता देगी। विश्वबन्धुता की सुरक्षा के लिए जिओ और जीने दो के सन्देश को मानवता की परिधि से बढ़ा कर विश्वबन्धुता तक पहुंचाना ही होगा। यह इसलिए कि जितने भी जीव हैं, वे सब जीवन में जीना चाहते हैं, मरना नहीं, सभी को प्राण प्रिय हैं, अतएव उन्हें जीने देना चाहिए, मारना नहीं चाहिए।

यदि आज महावीर होते तो वे हिंसकों से कहते—दूसरों को मारने से पहले जरा स्वयं तो एक बार मर कर देखो तो पता चले कि मरने में कितना कष्ट होता है। यदि आज महावीर होते तो वे शोषकों से कहते—दूसरों का शोषण करने से पहले जरा स्वयं तो शोषित होकर देखो। यदि आज महावीर होते तो वे कर्म-फल के अविश्वासियों को अनेक युक्तियों से समझाते—संसार की विषमता के मूल में व्यक्तियों के कर्मों और फलों की विषमता व्याप्त है। यह आँखों आगे प्रत्यक्ष देख लेख कर ही कर्म-फल के रहस्य को समझलो। यदि आज महावीर होते तो धर्म और दर्शन के नाम पर अपनी ही डींग हांकने वालों से कहते—तुम्हारी बात इस दृष्टि से सही है और उसकी बात इस दृष्टि से सही है। इसलिए विरोध का नहीं समन्वय का मन्त्र सीखो और वह अनेकान्त है। यदि आज महावीर होते तो अनन्य ईश्वरवादियों से कहते—जब शिशु विकसित होकर वृद्ध बन सकता है, तब जीवात्मा (जो ईश्वर का अंश है) वह परमात्मा क्यों नहीं बन सकता है? यदि आज महावीर होते तो वे जीव-दया के सन्दर्भ में कहते—जो भी जीवधारी है, जीवन लिये जीता है उसे अपना जीवन संसार की सभी वस्तुओं से भी अधिक प्रिय है, अतएव अपनी भाँति उसे जीने दो। यदि उसे विपत्ति से नहीं बचा सको, तो मत बचाओ पर अपने सुख-स्वाद के लिए उसे दुख भी तो मत पहुंचाओ। यदि आज महावीर होते और उन्हें बढ़िया भोजन, बढ़िया वस्त्र, बढ़िया बंगला, बढ़िया आजीविका, बढ़िया सम्मान श्रद्धा से देते तो वे कहते—जब तक संसार का एक भी व्यक्ति भूखा है, एक भी व्यक्ति नंगा है, एक भी व्यक्ति मकान-विहीन है, एक भी व्यक्ति बेकार है, एक भी व्यक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद-विहीन है, तब तक मैं तुम्हारी इन चीजों को कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। इन चीजों को तुम मुझे नहीं, उन्हें दो जिन्हें इनकी आवश्यकता है। मैंने इन्हें पाने के लिए संसार नहीं छोड़ा था, और यों महावीर और भी महावीर होते।

प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी मानसिक परिपक्वता के अनुसार महावीर को, उनकी मानवता को उनकी विश्वबन्धुता को परखा है, पर पूर्णतया किसने परखा है? यह कहना आशा और आकांक्षा की पूर्ति से भी कहीं अधिक कष्ट साध्य है। महावीर ने भक्तों से अपने लिए इतनी श्रद्धा और निष्ठा कदापि नहीं चाही कि उनका व्यक्तित्व और विचार स्वातंत्र्य उनमें केन्द्रित या स्वयं में कुंठित हो जावे। उन्होंने यह भी नहीं चाहा कि लोग उनकी मूर्तियाँ बनावें, उन्हें प्रतिष्ठित कराकर मन्दिरों में प्रतिदिन पूजें, उनकी जय जयकार करें, उनके जीवन और सिद्धान्तों पर बढ़िया भाषण देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लें, पर महावीर ने यह अवश्य चाहा होगा कि सही शब्दों में मेरे अनुयायी-अनुचर-अनुयायी वे ही व्यक्ति कहलावेंगे, जो मेरे सदृश अपने जीवन से आचरित और व्यवहृत होंगे। महावीर ने अपने अनुयायियों से उच्च अधिकारी बनने, शान शौकत, रौब-दाब से रहने, येन केन प्रकारेण सम्मानित होने की आशा नहीं रखी होगी, पर अपने मतानुयायियों से आज्ञा-प्रधानी के स्थान में परीक्षा-प्रधानी बनने की, अन्य के शिक्षण के स्थान में स्वयं के शिक्षण की, अन्तरंग के दर्पण में आत्म-निर्माण के निरीक्षण और परीक्षण की, समय-समय पर सही दिशा में विचार-हृदय-परिस्थिति में परिवर्तन कर दैनिक जीवन के धरातल में अभ्युत्थान की आशा अवश्य रखी होगी।

विचार के इस बिन्दु से महावीर के आधुनिक अर्वाचीन अनुयायियों को अपने उत्तरदायित्व का बोध होना चाहिए। कभी उनकी भांति घर छोड़ कर वन में जाने का, श्रद्धा-विवेक-क्रिया मूलक श्रावक बनकर, लोक धर्म का निर्वाह करने के उपरान्त मुनि बनने का विचार भी करना चाहिए। जीव-दया की भावना को दृष्टि में रखते हुए चार कषाय (क्रोध-मान-माया-लोभ), पाँच पाप (हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रह), सप्त व्यसन (जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरा पान करना, वैश्या सेवन करना, चोरी करना, पर स्त्री सेवन करना, शिकार खेलना) से बचना चाहिए। जो न्याय को छोड़ अन्याय की ओर भागे, जो भक्ष्य को छोड़कर अभक्ष्य की ओर बढ़े, जो सम्यक्त्व को छोड़कर मिथ्यात्व अपना ले, वे महावीर के अनुयायी नहीं हैं।

जिन महावीर की महिमा गणधर ही नहीं कह सके, उसे हम क्या कह सकते हैं। श्रद्धापूर्वक प्रणाम मात्र कर सकते हैं। □

महावीर की वाणी

कैलाश 'तरल'

तूने जीवन यूंज गँवायो
बस खायो और खुटायो

माया को फंदा लइ लेगो एक दन थारा प्राण।
महावीर की वाणी सुनले तो हुइ जावे कल्याण॥

धोलो और कालो धन तूने दोई हाथ से लूट्यो
धरम का नाम पे एक पइसो भी छाती से नी छूट्यो
साथें कई लइ जावेगा? करतो जा थोड़ो दान।
महावीर की वाणी सुनले तो हुई जावे कल्याण॥

पाड़ोसी तो मर्यो भूख से पन पीयो घी तूने
किस्तर थारो मन मानीग्यो क्यों दया करी नी तूने?
भूली ग्यो कईं थारो हिवड़ो तो है दया की खान।
महावीर की वाणी सुनले तो हुइ जावे कल्याण॥

अपनी मतलब सीधी करने तूने फिरको अलग चलायो
बीज फूट का तो बोया पन फल लगने नी पायो
लई एकता को सन्देशो यों दन आयो आज महान।
महावीर की वाणी सुनले तो हुई जावे कल्याण॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org